1

ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर प्रथम सशक्त प्रहार

यद्यपि अंग्रेजों ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को राजा-रजवाड़ों की बगावत कहकर नकार दिया, तथापि सत्य यह है कि इस देशव्यापी संग्राम के सेनानायकों ने भारत को एक युद्धस्थल बनाकर विदेशी तख्त को हिला दिया था। प्रत्येक पंथ, मजहब, क्षेत्र, जाति के लोगों ने एकजुटता का परिचय दिया। एक लाख वर्गमील में फैले इस 'रण' में चार लाख भारतीय शहीद हुए। स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, राजा राममोहन राय जैसे राष्ट्रीय महापुरुषों ने प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप देश में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पुनर्जागरण एवं सशस्त्र क्रांति का आधार तैयार हो गया।

भारत में अंग्रेजों के अत्याचारी शासन के विरुद्ध 1857 में लड़े गए देशव्यापी सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम ने अंग्रेज शासकों के हिंदुत्व/भारत विरोधी कुटिल इरादों को झकझोरकर रख दिया था। सात समुद्र पार से आए षड्यंत्रकारी ईसाई-साम्राज्यवादियों की जड़ों को हिला देनेवाले इस महा स्वातंत्र्य समर ने ही वास्तव में 1857 से 1947 तक लड़े गए स्वतंत्रता समर का शिलान्यास कर दिया था। यद्यपि अनेक ईसाई, साम्यवादी एवं अंग्रेजभक्त इतिहासकारों ने इस युगांतकारी स्वतंत्रता समर को मात्र इने-गिने और बिखरे हुए राजे-रजवाड़ों की अव्यवस्थित बगावत करार दिया था। भारत के कोने-कोने में फैले इस संगठित/शक्तिशाली राष्ट्रीय संघर्ष को नकारकर इसे मात्र कुछ सैनिकों का विद्रोह घोषित करने के पीछे कई कारण थे। अंग्रेज-साम्राज्यवादियों की प्रतिष्ठा को बचाना, अपने विरुद्ध संगठित हो रहे

भारतवासियों को निरुत्साहित करना, ब्रिटिश सैनिकों का मनोबल बरकरार रखना और विदेशों में भारत तथा भारतीयों को कमजोर एवं असंगठित सिद्ध करना इत्यादि उद्देश्यों से प्रेरित अनेक इतिहासकारों ने अनेक ग्रंथ रच डाले। इन ग्रंथों में सत्य और तथ्यों का बेरहमी से हनन करके स्वतंत्रता समर के सेनापतियों/सेनानियों को महत्त्वाकांक्षी, सत्तालोलुप और धनकुबेर तक कह दिया गया।

विधर्मियों के विरुद्ध देशव्यापी महाक्रांति

अंग्रेजों की यह घिनौनी साम्राज्यवादी चाल कुछ वर्षों के बाद ही तार-तार होकर उनके ही कूड़ेदान में फेंक दी गई। 1857 के मात्र 50 वर्ष बाद ही भारत के एक महान् स्वतंत्रता सेनानी वीर सावरकर ने इंग्लैंड की राजधानी लंदन में ही एक 550 पृष्ठ की पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर' लिखकर इस महासमर की सच्चाई को जगजाहिर कर दिया। सावरकर के इस ऐतिहासिक ग्रंथ से प्रेरित एवं उत्साहित होकर बाद में अनेक लेखकों ने अपने साहित्य में 1857 के स्वतंत्रता-सेनानायकों के युद्ध कौशल, योजनाबद्ध लोकसंग्रह, शस्त्र-एकत्रीकरण, गाँव-गाँव तक पहुँचनेवाली गुप्त रणनीति और समयबद्ध अंग्रेजों की फौजी छावनियों पर भीषण आक्रमण आदि का वर्णन किया है। ब्रिटिश सरकार के अधिकृत दस्तावेजों में भी स्वीकार किया गया है कि इस जंग को लड़नेवाले 'विद्रोही' सेनानायकों की तादाद चार सौ से भी ज्यादा थी। अंग्रेजों ने यद्यपि नाना फडनवीस, तात्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह, मौलवी अजीमुल्ला खाँ, नाना साहब इत्यादि सेनानायकों को बगावती तत्त्व कहकर पूरे महासमर को हल्का करने का विफल प्रयास किया है, परंतु यह एक सच्चाई है कि इन्हीं सेनापतियों ने पूरे भारत को एक युद्धस्थल बना दिया था।

वर्तमान समय के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक डॉ. सतीश चंद्र मित्तल के अनुसार, 'इस महासंघर्ष में 4 करोड़ लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया। चार लाख भारतीयों का बलिदान हुआ और संपूर्ण देश का एक लाख वर्गमील क्षेत्र प्रभावित हुआ।' वीर सावरकर ने लगभग एक हजार ग्रंथों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला था कि इस संघर्ष को देश के कोने-कोने में फैलाने के लिए गाँव-गाँव तक रोटियाँ पहुँचाने, प्रत्येक फौजी छावनी तक कमल का फूल भेजने जैसी साधारण गतिविधियों के माध्यम से पूरे देश को जोड़ लिया गया। तीर्थयात्राओं का आयोजन करके प्रत्येक देशवासी को हथियारबंद होने का आदेश दे दिया गया। इतना ही नहीं, स्वदेशी राजाओं और विदेशी शक्तियों से भी संपर्क स्थापित कर लिए गए। इस संघर्ष की रणनीति में सैनिक छावनियों में विद्रोह, शस्त्रागारों पर कब्जे, अंग्रेज-अधिकारियों

को समाप्त करने, सरकारी खजानों को लूटने एवं जेलों में बंद भारतीय कैदियों को जबरदस्ती छुड़ाने जैसी सीधी कार्रवाइयाँ शामिल थीं। इन सशस्त्र हलचलों का तुरंत/सीधा असर संपूर्ण भारत (अफगानिस्तान, भूटान, बलूचिस्तान तक) में हुआ। इस महासमर में भारत की प्रत्येक जाति, मजहब, संप्रदाय, क्षेत्र और भाषा-भाषियों ने पूरी ताकत के साथ भाग लिया। अत: यह मात्र सैनिक विद्रोह न होकर पूरे देश की पूरी जनता का संघर्ष था। स्पष्ट है कि जब सारा भारतवर्ष ही ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ शस्त्र उठाकर एकजुट हो गया हो, तो इस राष्ट्रीय जागरण का उद्देश्य समूचे भारत को अंग्रेजों के कब्जे से छुड़ाकर पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना ही था। इसीलिए इस राष्ट्रव्यापी संघर्ष को स्वतंत्रता संग्राम कहा गया है। यही फिरंगियों को बरदाश्त नहीं हुआ।

एक कमजोर राजनीतिक कड़ी

सन् 1857 का महासमर अंग्रेजों को भारत से खदेड़ नहीं सका। इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह भी था कि इस सशस्त्र विद्रोह के संचालन-सूत्र एक ऐसे शासक के हाथों सौंप दिए गए, जो न सेनानायक ही था, न ही कुशल प्रशासक। सभी हिंदू-सेनानायकों ने भारत के अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर को संभवतया इसीलिए स्वतंत्रता समर का नेतृत्व सौंपा, ताकि मुसलिम समाज पूरी तरह से संघर्ष में कूद पड़े; हालाँकि यह सत्य है कि साधारण मुसलमान पूरी तरह संघर्ष में शामिल हुआ, परंतु अधिकांश मुल्ला-मौलवी, संभ्रांत मुसलमान एवं नेता इस संघर्ष से दूर ही रहे। इतिहास-लेखक डॉ. सतीश चंद्र मित्तल लिखते हैं—'बहादुरशाह कोई चमत्कारी सम्राट् नहीं था। वह समस्त राष्ट्र को जोड़नेवाली नहीं, अपितु सबसे कमजोर कड़ी था। राजनीतिक दृष्टि से यदि वह जोड़नेवाली कड़ी होती, देश के किसी कोने में तो उसकी जय-जयकार होती।' यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि बहादुरशाह के बुलावे पर कोई भी राजा अथवा रजवाड़ा संघर्ष के लिए आगे नहीं आया। ये सभी शक्तियाँ स्वयमेव स्वतंत्रता संग्राम में आगे आईं।

इस अक्षम नेता की वजह से ही अंग्रेजों को स्वतंत्रता सेनानियों तथा आम नागरिकों पर दमनचक्र चलाने का मौका मिल गया। लाखों लोगों को फाँसी के फंदे पर लटकाया गया। कई शहरों, कस्बों और गाँवों को आग के हवाले कर दिया गया। अत्याचार की सभी सीमाएँ लाँघकर अंग्रेजों ने इस स्वतंत्रता संग्राम को राजनीतिक दृष्टि से विफल कर दिया। इस महासमर के समय जो थोड़ी-बहुत हिंदू-मुसलिम एकता का माहौल बना, उसे भी अंग्रेज-शासकों ने मुसलमानों को एक अलग कौम

और राष्ट्रीयता बताकर समाप्त कर दिया। अंग्रेजों की इस चाल में फँसकर सर सैयद अहमद खाँ-जैसे सुधारक मुसलिम नेताओं ने द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत पर आधारित फिरकापरस्ती को जन्म दे दिया।

हिंदुत्व-विरोधी साजिश

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का यदि गहराई से अध्ययन करें, तो यह ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यह राष्ट्रव्यापी सशस्त्र संघर्ष भारतीय राष्ट्र की पहचान हिंदुत्व का जागरण था, जिसे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उभार कहा जा सकता है।

वास्तव में भारत में गत एक हजार वर्षों से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की सुरक्षा/स्वतंत्रता के लिए निरंतर लड़े जा रहे संग्राम की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी था, यह 1857 का महायुद्ध। अंग्रेजों द्वारा दुष्प्रचारित यह 'बगावत' उन्हीं के ही हिंदुत्व-विरोधी षड्यंत्र के विरुद्ध एक सशस्त्र प्रयास था। 19वीं शताब्दी के शुरू होते ही ईसाई पादरियों ने सत्ता का निरंकुश सहारा लेकर देश के प्रत्येक हिस्से में साम-दाम-दंड-भेद द्वारा ईसाईकरण का जो अभियान छेड़ा, उसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारत में हिंदुत्व के पुरोधाओं ने जो सुधार-आंदोलन प्रारंभ किए, वही 1857 के संग्राम की मुख्य प्रेरणा/चेतना बनकर सामने आए।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का मुख्य उद्देश्य भारत से अंग्रेजों को खदेड़कर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की रक्षा करना था। 1857 के पूर्व सत्ता के संरक्षण में कट्टर ईसाई पादरियों ने सरकारी अधिकारियों के साथ मिलकर ईसाइयत को थोपने के लिए अनेक प्रकार के अनैतिक हथकंडों का इस्तेमाल किया। सरकारी विद्यालयों में महापुरुषों, देवी-देवताओं के भद्दे/मनगढ़ंत चरित्र पढ़ाए जाने लगे। सेना में भी ईसाई तौर-तरीके अपनाए जाने प्रारंभ हो गए। सरकारी नौकरियों में पक्षपात भी अपनी पराकाष्ठा पार कर गया। यहाँ तक कि कोर्ट-कचहरियों में भी अंग्रेजी-भाषा एवं ईसाई कानून-कायदों को भी प्रमुखता दी जाने लगी। धर्म-परिवर्तन की इस जबरी आँधी में भारतीय जीवन-मूल्य समाप्त होने का जब खतरा पैदा हुआ, तब सदैव की भाँति इस बार भी हमारे संत-महात्मा तथा संस्कृतिरक्षक सामाजिक नेताओं ने सामने आकर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ऐसी आँधी चलाई, जिसने विदेशी एवं विधर्मी आँधी को सफलतापूर्वक रोका। भारत को स्थायी उपनिवेश बनाने के अंग्रेजों के कुकृत्यों पर लगाम लगनी प्रारंभ हुई। धर्म/संस्कृति और दीन-ईमान का यह राष्ट्रव्यापी जागरण भारत के प्रत्येक क्षेत्र में

रहनेवाले सभी भारतीयों के अंतर्मन में गहराई से जड़ जमाए बैठी धार्मिक आस्था थी, जिसे गत 1,200 वर्षों में समाप्त करने का प्रयास करनेवाली सभी विदेशी एवं विधर्मी शक्तियों को मुँह की खानी पड़ी। यही अपराजेय हिंदुत्व अर्थात् भारतीय संस्कृति का ठोस परिचय है।

हिंदू-संतों ने जगाई अलख

सन् 1857 के कालखंड में अनेक धार्मिक नेताओं एवं संतों ने हिंदुत्व के जागरण की ध्वजा को पूरे देश में फहराने में अपना अद्‌भुत योगदान देने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। इसी समय में संघर्षरत राजा राममोहन राय ने 1828 में 'ब्रह्मसमाज' नामक संस्था की स्थापना करके भारत में हिंदुत्व के जागरण का बीड़ा उठाया। ब्रह्मसमाज का उद्‌देश्य ईसाइयत के बढ़ते प्रभाव को रोकने के साथ-साथ हिंदू-समाज की कुरीतियों को दूर करके एक शक्तिशाली हिंदू-संगठन तैयार करना भी था। राजा राममोहन राय अपने उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए जी-जान से जुटे और काफी हद तक सफलता भी प्राप्त कर सके। अत्यंत दिलचस्प परंतु सनसनीखेज तथ्य यह भी है कि ईसाई पादरी मैक्समूलर ने राजा राममोहन राय को ईसाई धर्म में दीक्षित करने तथा उनकी प्रगतिशील संस्था ब्रह्मसमाज का नाम बदलवाकर 'क्रिश्चियन-आर्यस' रखने का भरसक प्रयास किया, परंतु उसे हिंदुत्व की चट्टान से टकराकर अपना सिर फुड़वाने के सिवाय कुछ भी हाथ न लगा।

राजा राममोहन राय की इस राष्ट्रनिष्ठा से प्रेरणा लेकर अनेक राष्ट्रभक्त नेता ईसाई तानाशाहों के विरुद्ध प्रारंभ हुए 'धर्म/संस्कृति बचाओ आंदोलन' में कूद पड़े। महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोर (महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर के पिता), प्रताप चंद्र मजूमदार, केशव चंद्र सेन, शिवनाथ शास्त्री इत्यादि नेताओं ने इस धार्मिक आंदोलन को देशव्यापी बनाने के प्रयत्न प्रारंभ कर दिए।

इस संघर्ष में स्वामी दयानंद एवं उनके द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' ने इस राष्ट्रनिष्ठ धर्म-जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पूरे भारत, विशेषकर उत्तरी एवं मध्य भारत में ईसाई-पादरियों के हिंदुत्व-विरोधी एजेंडे के परखच्चे उड़ा दिए। प्रसिद्ध स्वतंत्रता-सेनानी एवं राष्ट्रवादी, कांग्रेस के ध्वजवाहक अमर शहीद लाला लाजपत राय के अनुसार—"स्वामी दयानंद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'भारत भारतीयों का' का गगनभेदी नारा गुँजाया था।" वे भारत में स्वदेशी के जनक थे, जिन्होंने कहा था कि विदेशी राज्य कभी भी स्वराज्य का प्रतिनिधि नहीं हो सकता।" इस ऐतिहासिक तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्वामी दयानंद ने न केवल

1857 के स्वतंत्रता संग्राम की नींव रखी, अपितु वे इसके बाद भी 90 वर्षों तक अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े गए सशस्त्र एवं अहिंसक संग्राम के प्रेरक बने।

उग्र राष्ट्रवाद का उदय

स्वामी दयानंद के अनुसार—'देश, राष्ट्र एवं समाज की उन्नति देश के आध्यात्मिक/सांस्कृतिक उत्थान में ही है।' 1857 के बाद का इतिहास साक्षी है कि आर्य समाज द्वारा प्रारंभ किए गए अनेकविध समाज-सुधारों, शुद्धि-आंदोलनों (घरवापसी) तथा ईसाई अथवा अंग्रेज-विरोधी गतिविधियों से अनेक राष्ट्रवादी स्वतंत्रता-सेनानायक उत्पन्न हुए, जिन्होंने ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने में मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वामी श्रद्धानंद, लाला लाजपत राय, शहीद सरदार भगत सिंह, श्यामजी कृष्ण वर्मा, रामप्रसाद बिस्मिल, महात्मा हंसराज, वीर सारवरकर, सुभाष चंद्र बोस, डॉ. हेडगेवार तथा डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे राष्ट्र नेताओं पर ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज का विशेष प्रभाव रहा।

सन् 1857 से पूर्व इसी कालखंड में आध्यात्मिक जगत् के एक अन्य मूर्धन्य संन्यासी स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के जागरण में अपनी अहम भूमिका निभाई। ये महान् संत काली माता के भक्त और कलकत्ता में दक्षिणेश्वर मंदिर के मुख्य पुजारी थे। आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ऊँचे उठ चुके इस संत ने नैतिक जीवन, परमात्मा के साथ आत्मा की एकता, सभी संप्रदायों/जातियों में एकता, ईश्वर के साक्षात् स्वरूप, मानव-समाज की सेवा, इत्यादि हिंदुत्व के सिद्धांतों के प्रचार को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर ईसाइयत के खिलाफ एक प्रकार का मौन आंदोलन छेड़ दिया। स्वामी रामकृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति में संस्कारित होकर स्वामी विवेकानंद जैसे राष्ट्रभक्त संत तथा बंकिमचंद्र जैसे देशभक्त राष्ट्रवादी नेता तैयार हुए, जिन्होंने देश के आत्मगौरव को जाग्रत् करने एवं 'वंदे मातरम्' राष्ट्रगीत लिखने का कार्य करके हिंदुत्व की ध्वजा को भारत समेत पूरे विश्व में फहरा दिया।

उपर्युक्त हिंदुत्व/सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने अंग्रेजों के विरुद्ध एक ऐसी विद्रोहात्मक चिनगारी लगाई, जिसका परिणाम था 1857 का ईसाई-विरोधी भीषण दावानल, जिसे अंग्रेजों ने एक साधारण बगावत का नाम दिया था। सावरकर जैसे राष्ट्रभक्त क्रांतिवीरों ने इसे भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए लड़ा गया महासंघर्ष कहा। 1857 से पूर्व और पश्चात् उत्पन्न हुई प्रचंड राष्ट्रीय चेतना से घबराए ब्रिटिश शासकों एवं संपूर्ण भारत को ईसाइयत में तब्दील करने को आतुर ईसाई धर्मनेताओं को बहुत शीघ्र एक और परंतु पहले से कहीं ज्यादा भयानक सशस्त्र विप्लव/निर्णायक महाक्रांति

के संकेत मिलने लगे। ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति के ठोस संकेतों ने 28 वर्ष बाद 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उत्पत्ति का बीजारोपण किया। इसके साथ ही कांग्रेस के संस्थापक ए.ओ. ह्यूम ने ईसाई-पादरियों, अंग्रेज-शासकों तथा अंग्रेजों द्वारा तैयार किए गए भारतीय चाटुकारों की सक्रियता से भारतीय संस्कृति, शिक्षा-पद्धति, समाजशास्त्र, उज्ज्वल इतिहास और सर्वस्पर्शी हिंदू-विरासत पर कुठाराघात करने शुरू कर दिए।

लंदन में स्वतंत्रता-संग्राम की वर्षगाँठ

सन् 1907 में अंग्रेजों ने लंदन में 1857 की 50वीं वर्षगाँठ को 'विजय-दिवस' के रूप में धूमधाम से मनाया। ब्रिटेन के तत्कालीन पत्रकारों ने अनेक समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं में बड़े-बड़े लेख लिखकर अंग्रेजों की बहादुरी का बखान करते हुए भारत के महान् स्वतंत्रता-सेनानियों को कायर तथा स्वार्थी बताया। 6 मई, 1907 को लंदन के एक बड़े दैनिक समाचार-पत्र 'दी टेलीग्राफ' में लिखा था—'पचास वर्ष पूर्व इसी बहादुरी से हमारा साम्राज्य बचा था।' इन्हीं दिनों वहाँ पर एक नाटक को सार्वजनिक रूप से दिखाकर रानी लक्ष्मीबाई एवं नाना साहब जैसे वीर सेनापतियों को हत्यारा और दहशतगर्द प्रचारित किया गया। इस तरह के प्रचार के प्रायः सभी माध्यमों का सहारा लेकर अंग्रेजों ने वास्तव में अपने कायर सैनिकों की पीठ थपथपाई और भारत के वीर सेनानियों के शौर्य तथा महत्त्व को कम करने की कोशिश की। अपनी सेना की प्रशंसा के पुल बाँधकर अंग्रेज लोग अपनी गिर रही साख को बचाना भी चाहते थे। इसके लिए भारतीयों को बदनाम करना—यही एक रास्ता था।

उस समय लंदन में विद्यार्थी के रूप में रह रहे अनेक भारतीय युवकों ने अपने सेनानियों के अपमान का उत्तर देने के लिए 10 मई को स्वतंत्रता संग्राम की 50वीं वर्षगाँठ पर कई कार्यक्रमों का आयोजन किया। भारतीय युवाओं ने जुलूस, प्रदर्शन एवं सभाओं का आयोजन किया। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की स्मृति में अपने सीने पर बिल्ले लगाए एवं उपवास रखा। सार्वजनिक रूप से हुए इन अंग्रेज-विरोधी प्रदर्शनों से अंग्रेज तिलमिला गए। अनेक विद्यार्थियों को महाविद्यालयों से निकाल दिया गया। विनायक दामोदर सावरकर के नेतृत्व में अनेक युवाओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति तक संग्राम को जारी रखने की प्रतिज्ञा ली। संभवतया अंग्रेजों को अपने ही घर में राष्ट्रवाद के इस प्रचंड रूप के पहली बार दर्शन हुए।

इसी प्रकार लंदन के 'इंडिया हाउस' में भारत के देशभक्त युवकों द्वारा 10 मई, 1908 को 1857 की क्रांति की वर्षगाँठ का समारोह मनाया गया।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में विभिन्न स्थानों पर संदेश पहुँचाने के लिए इस्तेमाल की गई 'चपाती' प्रतीकस्वरूप बाँटी गई। क्रांति की आग लगानेवाला एक इश्तहार बाँटा गया, जिसमें अंग्रेजों द्वारा भारत में किए जा रहे जुल्मों को विस्तारपूर्वक बताया गया था। इस प्रकार के कार्यक्रमों का लंदन में ताँता लग गया। भारतीय युवक स्वतंत्रता के महत्त्व को समझने लगे। भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के जागरण की शुरुआत ब्रिटेन में ही हो गई। अतः 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की भाँति उस पर लिखी गई पुस्तक '1857 का स्वतंत्रता संग्राम' का भी विस्तृत प्रभाव पड़ा। सरदार भगत सिंह एवं उनके साथियों की गिरफ्तारी के बाद उनके पास इस पुस्तक की प्रतियाँ मिली थीं। 1942 में जर्मनी में कार्यरत 'फ्रैंड्स ऑफ इंडिया सोसाइटी' ने भी उस पुस्तक का प्रकाशन करके इसका बहुत प्रचार किया। सुभाष चंद्र बोस द्वारा स्थापित 'आजाद हिंद फौज' के निर्माण में भी उस पुस्तक ने अपनी भूमिका निभाई थी।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि भारतीयों में 'स्वधर्म-रक्षा', 'राष्ट्र की स्वतंत्रता', 'विधर्मियों का शासन' इत्यादि विषयों पर जोरदार चर्चा छिड़ गई। उस स्वतंत्रता संग्राम के मूल में वास्तव में धर्म को बचाना था। ईसाई-पादरियों द्वारा भारत की मूल संस्कृति को समाप्त करने के लिए जो षड्यंत्र रचे जा रहे थे, उनके विरुद्ध देश खड़ा हो गया। इसके पहले भी 1806 में वैलूर में जो सैनिक विद्रोह हुआ था, उसका कारण भी भारतीयों के धर्म में ईसाई-पादरियों की भारी दखलंदाजी थी।

पुनः जाग्रत् हुई प्रचंड राष्ट्रीय चेतना

भारत में अपनी राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक जड़ें हमेशा के लिए जमाने में किसी हद तक कामयाब होते हुए अंग्रेज-शासकों को वापस इंग्लैंड का रास्ता दिखाने के लिए 1857 में हुए सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम को अंग्रेजों ने अपनी कुटिल राजनीति, प्रबल सैन्यशक्ति, क्रूर दमनचक्र, अमानवीय अत्याचारों से दबा दिया। परंतु राजनीतिक तथा सैनिक दृष्टि से भारतीय स्वतंत्रता सेनानी भले ही पराजित हो गए हों, वे भविष्य में होनेवाली सशस्त्र क्रांति एवं राष्ट्रभक्त क्रांतिकारियों को संदेश देने में सफल हो गए। 1857 के महासमर के तुरंत पश्चात् भारत की राष्ट्रीय चेतना ने फिर अँगड़ाई ली और और पूरे देश में विदेशी राज्य को उखाड़ फेंकने के प्रयास शुरू हो गए। ये प्रयास धार्मिक जागरण, सामाजिक सुधार, राजनीतिक विरोध तथा सशस्त्र क्रांति के विस्फोट के साथ शुरू हुए, जो 1947 तक निरंतर चलते रहे।

सन् 1857 से 1885 तक के 28 वर्षों में ही अंग्रेजों को समझ में आ गया कि

भारत में बने रहने के लिए कुछ भारतीयों का सहयोग लेना ही पड़ेगा। ये अंग्रेजभक्त कुछ 'भारतीय' भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच पर एकत्र हो गए। इस मंच को ही अंग्रेज-सरकार का 'सुरक्षा-कवच' कहा गया। विदेशी/विधर्मी शासकों द्वारा अपनी सुरक्षा के लिए गठित इस सुरक्षा-कवच का पूरा इतिहास जानने से पूर्व तत्कालीन भारत में उन राष्ट्रवादी गतिविधियों को जानना बहुत जरूरी है, जिनसे घबराकर अंग्रेजों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी। स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, नामधारी सद्गुरु रामसिंह कूका, वासुदेव बलवंत फड़के, ज्योतिराव गोविंद फुले, महादेव गोविंद रानडे, इत्यादि राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी-अपनी संस्थाओं के माध्यम से हिंदुत्व-जागरण की प्रचंड लहर चलाकर भारतीय समाज में देशभक्ति तथा आत्मविश्वास पैदा कर दिया।

शक्ति-आराधना का समयोचित आह्वान

स्वामी विवेकानंद ने भारत की आत्मा धर्म/हिंदुत्व को जाग्रत् करने के लिए देश के नवयुवकों को शक्ति की आराधना करने का पाठ पढ़ाते हुए कहा कि 'पचास वर्षों तक सभी देवी-देवताओं को भूलकर केवल भारतमाता की पूजा करो। उठो, जागो और तक मत रुको, जबतक उद्देश्य पूरा न हो।' स्पष्ट है कि यह उद्देश्य, जिसकी पूर्ति का आह्वान स्वामीजी ने किया था, वह 'भारत की सर्वांगीण स्वतंत्रता' था। भारत में हिंदुत्व एवं संस्कृति के पुनर्जागरण के साथ स्वामीजी ने विदेशों में भी हिंदू-धर्म के उज्ज्वल सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार के साथ ईसाई-पादरियों एवं शासकों द्वारा भारत में किए जा रहे अत्याचारों की पोल भी खोली। स्वामीजी का यह आह्वान—"वीरो! साहस का अवलंबन करो। गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ।" महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, सावरकर, भाई परमानंद, डॉ. हेडगेवार, रामधारी सिंह दिनकर सरीखे स्वतंत्रता-सेनानियों ने स्वामी विवेकानंद को हिंदुत्व, अर्थात् भारतीय राष्ट्रवाद का सच्चा प्रतिनिधि बताते हुए युवकों को उनके उपदेशानुसार संगठित होने का आह्वान किया।

भारत की सर्वांगीण स्वतंत्रता के लिए स्वामी विवेकानंद कितने कटिबद्ध थे, यह सत्य उनके इसी आह्वान से प्रकट हो जाता है कि 'पचास वर्ष तक भारत माँ की पूजा करो', अर्थात् माता के हाथों में पड़ी हुई विदेशी बेड़ियाँ जबतक दूर नहीं हो जातीं, तब तक संगठित एवं शक्तिशाली होकर विधर्मी शासकों के विरुद्ध लड़ी जा रही जंग में शामिल हो जाओ।

स्वामी विवेकानंद की 3 भविष्यवाणियाँ

स्वामी विवेकानंद ने उस समय देश के समक्ष तीन बड़ी आवश्यकताएँ प्रस्तुत कीं। इन तीनों आह्वानों को स्वामीजी द्वारा की गई तीन बड़ी भविष्यवाणियाँ भी कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

1. युवकों को साहस बटोरकर स्वतंत्रता सेनानी बनने का सुझाव देते हुए स्वामीजी ने स्पष्ट किया था कि परतंत्रता की बेड़ियाँ टूटने के पश्चात् ही भारत की चातुर्दिक् उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा। स्वामी विवेकानंद ने 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में युवकों को पचास वर्ष तक शक्ति-पूजा करने का आह्वान किया। इतिहास के पन्ने साक्षी हैं कि इन्हीं पचास वर्षों में सशस्त्र क्रांति के रास्ते पर चलकर बिस्मिल, सरदार भगत सिंह, सावरकर, सुभाष, लाला हरदयाल, रासबिहारी बोस, मदनलाल धींगरा, सरदार ऊधम सिंह, अशफाकउल्ला खाँ, चाफेकर बंधु, खुदीराम बोस, चंद्रशेखर आजाद, राजगुरु, सुखदेव, शचींद्रनाथ सान्याल, यतींद्रनाथ दास, बटुकेश्वर दत्त, करतार सिंह सराबा, इत्यादि हजारों युवकों ने अपने-अपने क्षेत्र में सशस्त्र क्रांति का बिगुल बजाया। परिणामस्वरूप स्वामीजी की यह इच्छा अथवा भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। भारत 1947 में स्वतंत्र हुआ। यह बात अलग है कि कांग्रेस की मुसलिमपरस्त नीतियों और अंग्रेजों की भारत-विरोधी मानसिकता के फलस्वरूप देश के टुकड़े हो गए।
2. स्वामीजी की दूसरी इच्छा थी कि स्वतंत्रता आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय होना जरूरी है। स्वामी विवेकानंद की यह भविष्यवाणी भी सत्य साबित हुई। कांग्रेस का मार्गदर्शन अथवा नेतृत्व जब महात्मा गांधी के हाथों में आया, तब कांग्रेस का अहिंसावादी आंदोलन सारे देश में फैल गया। कांग्रेस ने पहली बार पूर्ण स्वराज्य की बात कही और 1930 में इस संबंध में प्रस्ताव भी पारित हुआ। देश में कार्यरत सभी धार्मिक, सामाजिक एवं सुधारवादी संस्थाओं ने कांग्रेस द्वारा घोषित आंदोलनों/सत्याग्रहों में भाग लिया। उस समय पूरे भारतवर्ष की समस्त जनता ने गांधीजी का नेतृत्व स्वीकार करते हुए अपने संस्थागत चरित्र से ऊपर उठकर स्वतंत्रता-आंदोलन में शिरकत की। इस तरह आंदोलन के एक अखिल भारतीय स्वरूपवाली स्वामीजी की कल्पना/भविष्यवाणी साक्षात् धरातल पर उतर आई। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि यद्यपि महात्मा गांधी ने

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, आर्य समाज और हिंदू महासभा, इत्यादि सभी संस्थाओं की ठोस भागीदारी को स्वीकार किया, तथापि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस के दिग्गजों ने गांधीजी की इच्छा के विरुद्ध सारे स्वतंत्रता-आंदोलन को एक ही नेता (गांधीजी) और एक ही दल (कांग्रेस) के नाम कर दिया।

3. इसी तरह स्वामी विवेकानंद की तीसरी इच्छा/भविष्यवाणी यह थी कि देश में सैकड़ों की संख्या में कुछ ऐसे नवयुवक तैयार हों, जो राष्ट्र की अस्मिता/सर्वांगीण स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सर्वस्वार्पण के लिए तैयार हों। स्वामीजी ने धर्मनिष्ठ, राष्ट्र-समर्पित और समाजभक्त युवा संन्यासियों की कल्पना की थी। स्वामी विवेकानंद के अंतर्मन में उठी यह कल्पना चरितार्थ हुई 1925 में 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' की स्थापना के साथ। संघ-संस्थापक डॉ. हेडगेवार द्वारा स्थापित प्रचारक-पद्धति 'युवा संन्यासी' का ही साक्षात् स्वरूप है। संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्रीगुरुजी गोलवलकर ने स्वामी विवेकानंद द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन से आध्यात्मिक दीक्षा ली थी और मिशन के संन्यासी बनने की इच्छा प्रकट की थी। रामकृष्ण मिशन के उस समय के प्रमुख स्वामी अखंडानंद ने उन्हें यह कहकर संन्यास-दीक्षा नहीं दी थी—"आपका कार्यक्षेत्र तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही है। आप इसी के माध्यम से स्वामी विवेकानंद द्वारा घोषित उद्देश्य के लिए कार्य करें।" यहाँ उल्लेखनीय है कि स्वामी अखंडानंद ने स्वामी विवेकानंद का काला कमंडल श्रीगुरु गोलवलकर को भेंट करते हुए कहा, "इस पात्र से प्रेरणा लेकर आप भारत का भ्रमण करें और अखंड भारत की सर्वांगीण स्वतंत्रता का लक्ष्य प्राप्त करें।" सर्वविदित है कि श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने जीवनपर्यंत अपने गुरु के आदेश का पालन किया और हजारों युवा संन्यासियों (प्रचारकों) को तैयार करते हुए एक सशक्त हिंदू-संगठन के स्वामी विवेकानंद के स्वप्न को साकार कर दिया।

वासुदेव बलवंत फड़के का प्रथम प्रहार

यह स्पष्ट हुआ कि कांग्रेस की स्थापना के पूर्व ही स्वामी विवेकानंद ने हिंदू-जागरण का ठोस आधार तैयार कर लिया था। सांस्कृतिक उत्थान की सारी गतिविधियों ने ब्रिटिश शासकों की नींद हराम कर दी थी। उधर महाराष्ट्र तथा

निकटवर्ती क्षेत्रों में वासुदेव बलवंत फड़के ने किसान-आंदोलन प्रारंभ करके शहरों से गाँवों तक क्रांति की अलख जगा दी। उल्लेखनीय है कि यह युवा स्वतंत्रता सेनानी एक सरकारी दफ्तर में अंग्रेजों की चाकरी करता था। विदेशी अधिकारियों द्वारा भारतीय कर्मचारियों के साथ हो रहे दुर्व्यवहार को इसने न केवल नजदीक से देखा, अपितु अनुभव किया और भोगा भी। वासुदेव के घर से तार आया कि तुम्हारी माँ बहुत बीमार है, तुरंत घर पहुँचो। वासुदेव वह तार लेकर अंग्रेज अधिकारी के पास छुट्टी की प्रार्थना करने के लिए गया। उस अधिकारी द्वारा वासुदेव एवं उसकी वृद्ध माता के प्रति कहे गए अत्यंत अभद्र-अपमानजनक शब्दों ने युवा वासुदेव के मन में अंग्रेजों के प्रति पहले से भभक रही नफरत की आग में घी डालने का काम किया।

वासुदेव ने वह तार तथा प्रार्थना-पत्र अंग्रेज-अफसर के मुँह पर दे मारा और नौकरी छोड़कर आ गया। उसकी माँ तब तक प्राण छोड़ चुकी थीं। वासुदेव ने संस्कार के बाद प्रतिज्ञा की कि वह विदेशी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह की चिनगारी को भीषण आग में बदलेगा। तुरंत ही वासुदेव बलवंत फड़के ने युवकों, मजदूरों, किसानों को संगठित करने के लिए एक मोर्चा तैयार किया और विधर्मी शासकों के विरुद्ध जंग का ऐलान कर दिया। वासुदेव का यह प्रयास 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद तथा कांग्रेस की स्थापना (1885) से पूर्व सशस्त्र क्रांति की पहली सफल शुरुआत थी। इस जंग में किसानों ने मुख्य भूमिका निभाई। सरकार को लगान न देना, सरकारी कार्यों में बाधा डालना, अंग्रेज-अफसरों को गाँवों में न घुसने देना, इत्यादि हिंसक एवं अहिंसक, दोनों प्रकार की क्रांतिकारी गतिविधियों ने ब्रिटिश शासन की चूलें हिला दीं।

कूका-आंदोलन ने किया दूसरा प्रहार

इसी तरह पंजाब से लगते उत्तर भारत के इलाके में 'कूका' नामधारी संप्रदाय के संस्थापक सद्गुरु रामसिंह ने सिख-युवकों की एक फौज तैयार की। तलवार, भाला लाठी, इत्यादि के बाहा प्रशिक्षण के साथ बारूदी विस्फोट करने के तरीकों को भी अपनाया गया। हिंदू धर्म को आधार बनाकर चले इस लघु स्वतंत्रता तथा असहयोग आंदोलन को 'कूका-आंदोलन' कहा जाने लगा। राम, कृष्ण, गुरु नानकदेव तथा गुरु गोबिंद सिंह जैसे अवतारी महापुरुषों के जीवन-वृत्तों से प्रेरणा लेकर कूका-आंदोलनकारियों ने आध्यात्मिकता के आधार पर सशस्त्र क्रांति का एक अद्भुत स्वरूप उपस्थित किया। गऊ-गरीब की रक्षा को विशेष महत्त्व दिया गया। भारतीय जीवन-प्रणाली के केंद्र में गौमाता को स्थान दिया गया।

इसी दौरान एक मार्मिक घटना घट गई। लुधियाना (पंजाब) के निकट भैणी साहिब नामक स्थान था। कुछ ईसाइयों तथा असामाजिक तत्त्वों ने सार्वजनिक रूप से अनेक गऊओं को काट डाला। समाचार सुनते ही लुधियाना से नामधारी युवकों का एक सशस्त्र दल भैणी साहिब की ओर चल दिया। रास्ते में जो भी गऊओं का हत्यारा अथवा अंग्रेज-अधिकारी मिला, तुरंत मौत के घाट उतार दिया गया। प्रशासन ने हरकत में आकर पचास से ज्यादा युवा कूका-सरदारों को पकड़कर भयानक सजा देने का फैसला किया और एक मैदान में एकत्र कर बारी-बारी से सभी को तोप के मुँह पर बाँधकर उड़ा दिया गया। इस कूका-आंदोलन ने समस्त उत्तर भारत, विशेषतया पंजाब में सशस्त्र क्रांति के बीज बो दिए।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम ने जहाँ समस्त देश को एकसूत्र में बाँधने, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को पुनर्जीवित करने, भारतीयों को अपने दीन-धर्म की रक्षा करने और विदेशी शासकों को निकाल बाहर करने की एक योजना दी, वहीं इस महासमर के पश्चात् तेज गति से हुए धार्मिक जागरण और सशस्त्र क्रांति की शुरुआत ने ब्रिटिश सिंहासन को हिला दिया। अंग्रेजों के समक्ष अपने साम्राज्य को भारत में टिकाए रखने का एक ही रास्ता बचा कि किसी हथकंडे का इस्तेमाल करके भारतीयों के हाथों से हथियार छुड़ाकर भीख का कटोरा पकड़ा दिया जाए। 'तुम माँगो और तुम्हें मिलेगा' के मंत्रजाप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। □